परोपकार जीवन का आभूषण है

तेजपाल सिंह, अवर श्रेणी लिपिक
राष्ट्रीय जलविज्ञान संस्थान, रूड़की

जीवन ईश्वर का वरदान है, एक अवसर है और मनुष्य का जीवन तो मिट्टी के उस दीपक के समान है जो स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देता है । इसी प्रकार जो मनुष्य दूसरे का मार्गदर्शन करता है, सहायता करता है वह दीपक समान है । परोपकार मनुष्य के जीवन का आभूषण है । हमने जीवन में क्या कभी कुछ परोपकार किया । कभी दान किया, किसी के आंसू पोछे । किसी दु:खी के पास जाकर पूछा कि भाई तुम्हे क्या कष्ट है, क्या यह कार्य हमने कभी किया है? जाएं दीन-दु:खियों के पास निर्बलों के पास उनकी सहायता करें, उनके जख्मों पर मरहम लगाएं, इस परोपकार में चाहे कितना भी कष्ट उठाना पड़े, दोबारा यह अवसर मिले या न मिले परन्तु मिले हुए को हाथ से न जाने दो ।

धर्म और कर्तव्य

धर्म आदिकाल से मनुष्य का मार्गदर्शन करता रहा है । चाहे कोई भी धर्म हो मनुष्य को मनुष्यता की ही शिक्षा देता है । नैतिकता सिखाता है । कर्तव्य का ज्ञान कराता है । धर्म आचरण की वस्तु है धर्म मनुष्य को मानवता सिखाता है । पशुता से ऊपर उठकर देवत्व की ओर ले जाता है । धर्म केवल प्रवचन और वाद-विवाद का ही विषय नहीं है । मनुष्य समाज जिन नियमों के आधार पर चलता है, उनका नाम कर्तव्य है, धर्म है, नैतिकता के बिना धर्म नहीं, धर्म के बिना कर्तव्य नहीं, बिना आचरण के नैतिकता नहीं। जिस प्रकार सूर्य यदि प्रकाश न दे तो उसका कोई सार नहीं, चाँद का चाँदनी के बिना कोई महत्व नहीं, शीतलता के बिना जल का कोई महत्व नहीं, पौष्टिकता के बिना भोजन का कोई महत्व नहीं उसी प्रकार नैतिक आचरण के बिना मनुष्य जीवन का कोई महत्व नहीं है । यदि कोई व्यक्ति धार्मिक होने का दावा करता है और मनुष्यता, नैतिकता, आचरण व मानवता उसके जीवन में नहीं है तो वह केवल धर्म का आडम्बर ही माना जायेगा ।

अधिकार और कर्तव्य

आज का मनुष्य बहुत जागरूक है अपने अधिकारों के प्रति सचेत है परन्तु जहाँ कर्तव्य पालन की बात आती है तो पीछे हटता दिखाई देता है । चाहे वह सरकारी कामकाज हो चाहे राष्ट्र की सेवा हो । वहां वह लापरवाही दिखाता है । यदि किसी कर्मचारी को दो रूपये वेतन कम दे दिया जाए तो कानून की किताबें खोलने लगता है । अधिकारों की बातें करने लगता है परन्तु जब उसको कर्तव्य की, उसकी डयूटी की याद दिलाई जाती है तो वह सब कानून भूल जाता है । यदि व्यक्ति अपने अधिकार और कर्तव्य दोनों को एक साथ अपने आचरण में लाये तो बड़ी-बड़ी सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान आसानी से हो सकता है ।

सर्वप्रथम तो मनुष्य का एक बड़ा कर्तव्य माता-पिता की सेवा करना, आज्ञा का पालन करना बन जाता है । यदि माता-पिता के त्याग की चर्चा की जाये तो समझ में आयेगा कि माता-पिता अपनी सन्तान के लिए क्या कुछ नहीं करते, कितना कष्ट सहकर पालन-पोषण कर अपनी सन्तान

को कामयाब बनाते हैं और संतान उसके बदले उसे क्या प्रतिफल देती है। सुना है एक मां का एक बेटा था बचपन में जब वह छोटा था तो माँ उसको बारम्बार देखती और खुद ही उसके मल-मूत्र को साफ करती, दूध पिलाती, अच्छे से अच्छा भोजन उसको खिलाती । कभी-कभी तो बेटे की खुशी के लिए पति की सेवा में भी लापरवाही कर जाती । बच्चे की एक-एक क्रिया को देखकर प्रसन्न होती। अपने आप गीले में सोती अपने बेटे को सूखे में सुलाती । एक से एक पौष्टिक भोजन खिलाती। जब स्कूल पढ़ने जाता तो उसके खाने की चिन्ता करती । पुस्तकें लगाती, कपड़े संवारती और जब तक लौटकर नहीं आता तो दरवाजे पर खड़ी बच्चे की राह देखती रहती । बेटा यदि किसी बात पर नाराज होता या उसका पिता उसे डॉट देता तो जब तक मना न लेती तब तक स्वयं भोजन न करती । यदि पिता ने किसी गलती पर पिटाई कर दी तो उन्हें रोकती। यहाँ तक कि बेटे को बचाने के लिए प्रहार अपने ऊपर सह लेती है । यदि बेटा कहीं बाहर चला जाता है तो माँ का दिल बेचैन रहता और परमात्मा से बेटे की कुशलता के लिए प्रार्थना करती है । जब पुत्र युवा हो जाता है और किसी युवती के प्रेम में फंसकर माता-पिता की मर्जी के खिलाफ शादी कर लेता है, तो भी माँ उसके उज्जवल भविष्य की कामना करती है । पत्नी के लिए बेटा माँ का तिरस्कार करता है और पुत्रवधु भी सास-ससुर के साथ दुर्व्यवहार करती है तो भी माँ कहती है बेटे तुम पत्नी के साथ चाहे कहीं भी रहो परन्तु सुखी रहो । यह है माँ का प्यार और त्याग । कहते हैं कि संसार में माँ के समान कोई उपकारी नहीं। इसीलिए महाभारत में आता है कि यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा कि पृथ्वी से बड़ा कौन है तो युधिष्ठिर ने उत्तर दिया माता पृथ्वी से बड़ी है । पिता का स्थान आसमान से ऊंचा है । यह सही भी है जब घर में पुत्र पैदा होता है तो पिता को सर्वाधिक प्रसन्नता होती है वह उसमें अपना रूप देखता है अपना प्रतिनिधि समझता है। यूनानी दार्शनिक अरस्तु ने भी कहा है कि माता-पिता के समान सन्तान का कोई हितकारी नहीं हो सकता परन्तु क्या सन्तान भी समझती है इस बात को । संसार में कोई किसी को अपने से ऊंचा देखकर खुश नहीं होता परन्तु पिता अपने पुत्र को अपने से ऊंचा/उन्नत देखकर बहुत प्रसन्न होता है । अपने बेटे के गुणों की प्रशंसा करता है । अपने आप चाहे फटे वस्त्र हो परन्तु बेटे को अच्छे-अच्छे कपड़े लाकर देता है । परन्तु आज की सन्तान माता-पिता को अपने पास भी रखना पसन्द नहीं करती उनके लिए वृद्धावस्था आश्रम ढूंढते फिरते हैं ।

आचरण का महत्व

आचरण ही मनुष्य को महान बनाता है । अनाचारी व्यक्ति सदैव अपमानित होता है सम्मानित नहीं । किसी ने कहा है कि युवावस्था इस प्रकार बिताओ कि बुढापे में रोना न पड़े, और बुढापा इस प्रकार बिताओ कि किसी के आगे हाथ न फैलाना पड़े, कोई भी ऐसा कर्म न करो कि किसी को मुंह दिखाने के लायक न रहो । मर्यादापूर्ण जीना ही जीवन है और आचरणवान व्यक्ति ही केवल मर्यादा का पालन कर सकता है । बच्चा तीन स्थानों पर आचरण की शिक्षा लेता है प्रथम तो घर में, माता-पिता के आचरण से, दूसरे विद्यालय में अध्यापकों के चरित्र से और तीसरे जिस वातावरण में खेलता है, बड़ा होता है । चरित्र निर्माण के यही स्थान हैं यहीं से वह झूठ बोलना, चोरी करना, किसी को पीड़ा पहुंचाना आदि सीखता है । परन्तु आज के युग में तो अध्यापकों के भी आचरणहीनता के उदाहरण अखबारों में पढ़ने को मिल जाते हैं ।

परोपकार ही जीवन है

तुलसीदास जी ने लिखा है **"परहित सरिस धर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहीं अधमाई"** भक्ति कालीन कवि तुलसीदास जी कहते हैं कि परोपकार के समान कोई धर्म नहीं और दूसरों को पीड़ा पहुंचाने के समान कोई अधर्म नहीं है । परोपकार का अर्थ दूसरों की भलाई करना है । अपने लिए तो सब जीते हैं परन्तु मनुष्य जीवन की सार्थकता इसमें है कि वह दूसरों के लिए कितना जीता है । शक्तिशाली होकर भी निर्बल की रक्षा नहीं करता । धन होते हुए भी निर्धन की सहायता नहीं करता, ज्ञानी होकर भी अज्ञानी का मार्गदर्शन नहीं करता तो जीवन निरर्थक है । ऐसे मनुष्य और पशु में कोई खास फर्क नहीं । संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिसे किसी के सहयोग की जरूरत नहीं पड़ती । चाहे कोई बड़ा हो या कोई छोटा एक दूसरे के सहयोग से काम चलता है । कहते हैं मनुष्य ही इस पृथ्वी का आभूषण है । परन्तु जो मनुष्य की परिभाषा में खरा उतरता हो । कहते हैं हाथ की शोभा कंगन से नहीं दान से बढ़ती है, कान की शोभा कुंडल से नहीं सत्य-सत्य शास्त्रों के सुनने से बढ़ती है ।

परोपकार ही ईश्वर प्राप्ति का प्रथम सोपान है । यदि ईश्वर की समीपता चाहते हैं तो परोपकार में जीवन को लगाओ । सुना है एक बार एक सेठ को स्वप्न आया कि भगवान उनसे मिलना चाहते हैं । सेठ ने भगवान को निमंत्रण दे दिया कि कल आ जाओ । भगवान ने निमंत्रण स्वीकार किया । सेठ सुबह नहाये धोये नये कपड़े धारण किये मन्दिर गये पूजा पाठकर उस रोज कारोबार भी बन्द रखा । उसी समय एक बूढा गरीब दरवाजे पर आया कहा सेठ जी कई दिन से भूखा हूँ कुछ खाने को दे दो । सेठ ने नौकरों से कहा इसे भगाओ आज कोई भीख नहीं मिलेगी । थोड़ी देर बाद एक विधवा अपने बीमार बेटे को लेकर दरवाजे पर आयी बोली सेठ जी मेरा बेटा बीमार है । डाक्टर ने दया करके दवाई लिख दी है यदि दवाई न ली तो मर जायेगा । आप हम पर दया करो कुछ मदद कर दो मेरा बेटा बच जायेगा, सेठ जी ने उसे भी भगा दिया । दरवाजे पर गाय आयी सेठ जी ने उसको भी भगा दिया, कुत्ते आये उन्हें भी भगा दिया । शाम हो गई भगवान ने दर्शन न दिये । रात में फिर स्वप्न में भगवान दिखाई दिये, तो क्रोधित होकर बोला कि आप आये नहीं, भगवान ने कहा मेरे बनाये प्राणियों से तुम्हे प्यार ही नहीं, कोई सहानुभूति ही नहीं। भूखे को रोटी नहीं दी, बीमार की जान की परवाह नहीं की, बेजुबान पशुओं को भी जो कमा नहीं सकते उनको भी भगा दिया। यही तो मनुष्य के कर्त्वय हैं जो इनसे विमुख है क्या उन्हें कभी भगवान मिल सकते हैं ?

मनुष्य होकर जो यह विचार नहीं करता कि क्या कभी मुसीबत में किसी व्यक्ति के काम आया हूँ, दु:ख में प्रलाप करते हुए किसी की आंखों से अपने पल्लू से आंसू पोछे हैं , क्या किसी लाचार आदमी के लिए कुछ कष्ट उठाया है ? क्या कभी किसी संकट में फंसे हुए व्यक्ति की सहायता की है ? अपने अन्त:करण की गहराई में जाकर देखो यदि ये परोपकार नहीं किये तो जीवन निरर्थक है । मनुष्य के जीवन का सार यही है कि परोपकार को जीवन का आदर्श बनाये । परोपकार से कभी-कभी शत्रु भी मित्र हो जाते हैं । परोपकार के लिए संकुचित विचारों को छोड़कर हृदय की विशालता को धारण करना चाहिए । सुना है कि दो मित्रों में झगड़ा हो गया और वे दोनों एक दूसरे के शत्रु बन गये । कुछ दिन बाद एक मित्र बीमार हो गया और इतना बीमार हुआ कि उसे खून की आवश्यकता पड़ी परन्तु परिवार के किसी सदस्य का ब्लड ग्रुप नहीं मिला । दूसरा मित्र अस्पताल पहुंचा और डॉक्टर से कहा कि मेरा ब्लड ग्रुप मेरे मित्र से मिलता है परन्तु उनको व

उनके परिवार वालों को पता न चले, और मेरा खून निकाल कर मेरे मित्र के प्राण बचायें। डॉक्टर ने ऐसा ही किया परिवार वालों से कहा एक रक्त दाता का ब्लड ग्रुप मिल गया, इसके प्राण बच जाएंगे । हुआ भी ऐसा ही उसे ब्लड मिल गया और वह स्वस्थ हो गया। बाद में जब बात खुली तो वह बहुत लज्जित हुआ और परिवार सहित दूसरे मित्र के यहाँ उसका शुक्रिया व क्षमायाचना करने पहुंचे । दूसरे मित्र ने इसको अपना कर्तव्य मान उसके प्राण बचाये यह है परोपकार की भावना । दोनों फिर से मित्र बन गये । अतः परोपकार से कठोर भावना भी विनम्र हो जाती है ।

परोपकार की दृष्टि से भृतहरि महाराज के नीति शतक में मनुष्यों को चार भागों में बांटा है ।

प्रथमः जो बिना किसी स्वार्थ के दूसरों की भलाई करते हैं वे देव कोटि में आते हैं अर्थात इनका उद्देश्य केवल दूसरों की भलाई करना है।

द्वितीयः ये वे लोग हैं जो अपना भी काम संवारते हैं और दूसरों का भी काम बना देते हैं – ये मनुष्य कोटि में आते हैं ।

तृतीयः ये वे लोग हैं जो अपना काम तो संवार लेते हैं परन्तु दूसरों का काम बिगाड़ देते हैं ये राक्षस कोटि में आते हैं ।

चतुर्थः ये वे लोग हैं जो न तो अपना काम बनाते हैं और न ही दूसरों का काम बनने देते हैं । इनके विषय में कहा गया है कि अभी ऐसा शब्दकोश नहीं बना है जिसमें इनको कोई नाम दिया जाये।

अब हमें विचार करना चाहिए कि उपरोक्त चारों श्रेणियों में से हम किस श्रेणी में अपनी जगह रखते हैं ।